RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16, अंक-1, दिसम्बर 2022 जनवरी फरवरी 2023

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रास्ो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16 अंक - 1 दिसम्बर-2022, जनवरी-फरवरी-2023

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

वल्लभ सम्प्रदाय में मोक्ष की अवधारणा और नैतिक चिन्तन

किरन बड़ेरिया

सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)

हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

वल्लभ सम्प्रदाय में मोक्ष की अवधारणा अत्यन्त विशिष्ट और भावात्मक है। वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैत दर्शन के अनुसार मोक्ष का अर्थ केवल संसारबन्धन से मुक्त होकर परमात्मा में लीन हो जाना नहीं है, जैसा कि अद्वैत वेदांत में माना गया है, और न ही यह स्वर्ग अथवा अपवर्ग जैसे किसी अलौकिक लोक की प्राप्ति मात्र है। वल्लभ सम्प्रदाय में मोक्ष का स्वरूप पूर्णत: 'लीला–प्रवेश' अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण की नित्य, अखण्ड, गोलोक–विहार लीलाओं में प्रविष्ट होकर उनके प्रेमानन्द का अविरत अनुभव करना है। यहाँ मुक्ति केवल नकारात्मक अवस्था नहीं, बल्कि सक्रिय, आनंदमय और परम रसपूर्ण स्थिति है।

वल्लभाचार्य साधना के भेद के आधार पर जीवों में भेद स्वीकार करते हैं। वे बताते हैं कि संसार में तीन प्रकार के जीव होते हैं–पुष्टिमार्गीय, मर्यादामार्गीय और प्रवाहमार्गीय। इनमें प्रवाहमार्गीय जीव वे हैं जो संसार के प्रवाह में बहते रहते हैं और जिनके लिए मुक्ति का कोई अधिकार नहीं है। ये जीव जन्म और मृत्यु के चक्र में निरंतर घूमते रहते हैं। मर्यादामार्गीय जीव धर्म–शास्त्र की मर्यादाओं का पालन करके वैदिकी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु वल्लभाचार्य इसे सर्वोच्च नहीं मानते। उनके अनुसार मर्यादामार्गीय मुक्ति तुच्छ है, क्योंकि वह भगवत्सान्निध्य का पूर्ण अनुभव नहीं कराती। इसके विपरीत पुष्टिमार्गीय जीव वे हैं जिन्हें स्वयं भगवान की अहैतुक कृपा से उनका अनुग्रह प्राप्त होता है। इसके कारण पुष्टिमार्गीय भक्ति का स्तर अन्य सभी मार्गों से ऊँचा माना गया है।

वल्लभाचार्य के अनुसार ''पुष्टिमार्ग में भगवान श्रीकृष्ण की निर्हेतुक, निष्काम भक्ति ही जीव का सर्वोच्च साध्य है।'' यह भक्ति किसी फल की अपेक्षा नहीं करती, क्योंकि स्वयं भक्ति ही फल का रूप है। वल्लभाचार्य ने भक्ति की विभिन्न अवस्थाओं का अत्यंत सुंदर विश्लेषण किया है। उनके अनुसार प्रारंभ में भक्ति बीज रूप में रहती है, फिर क्रमश: प्रेम, आसक्ति और व्यसन के रूप में बढ़ती हुई अंतत: 'सर्वात्मभाव' की चरम अवस्था तक पहुँचती है। सर्वात्मभाव वह स्थिति है जिसमें जीव को सर्वत्र केवल श्रीकृष्ण का ही साक्षात्स्वरूप अनुभव होता है। वल्लभाचार्य कहते हैं कि जब जीव भगवान की प्राप्ति में विलम्ब को सहन नहीं कर पाता और तीव्र, आर्त भाव से उसे हर दिशा में केवल भगवान का ही दर्शन होता है, तो वह स्थिति सर्वात्मभाव कहलाती है।

इस सर्वात्मभाव की व्याख्या करते हुए वल्लभाचार्य स्पष्ट करते हैं कि यहाँ आत्मशब्द से अभिप्रेत पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही हैं, क्योंकि वे ही सभी जीवों के प्रत्यगात्म या अंतरतम स्वरूप हैं। भक्तिमार्ग में वही निरुपाधि स्नेह का विषय हैं। इसीलिए पुष्टिमार्गीय भक्त लौकिक या वैदिक किसी भी प्रकार के फलों की

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

ओर दृष्टि नहीं करते। उनके लिए स्वर्ग अथवा अपवर्ग भी अत्यन्त तुच्छ हैं। वे ज्ञानमार्गियों और मर्यादाभक्तों की काम्य विविध मुक्तियों को भी अस्वीकार कर देते हैं। उनके लिए एकमात्र लक्ष्य है भगवान श्रीकृष्ण का प्रेम और उनकी निष्काम, अहैतुक भक्ति।

वल्लभाचार्य के अनुसार पुष्टिमार्गीय भक्ति साधन भी है और साध्य भी। इसका परिपक्व रूप जीव को अलौकिक सामर्थ्य प्रदान करता है। यही अलौकिक सामर्थ्य मृत्यु के बाद जीव को श्रीकृष्ण की गोलोक-विहार लीलाओं में प्रवेश कराता है। इस स्थिति में जीव भगवान की नित्य, अखण्ड, अप्रतिहत लीला में अहर्निश सम्मिलित रहता है। यही लीलाप्रवेश उसका वास्तविक मोक्ष है। यह मुक्ति शाश्वत, अविचल और नित्य है, और एक बार इस भाव की प्राप्ति होने पर यह कभी नष्ट नहीं होती।

वल्लभाचार्य यह भी स्पष्ट करते हैं कि भगवदीयत्व अथवा कृष्णभाव मुक्ति का साधन नहीं, बल्कि मुक्ति का फल है। इसका अर्थ यह है कि जहाँ सच्ची भक्ति प्राप्त हो जाती है, वहाँ मुक्ति उसके पश्चात् आने वाली कोई अलग अवस्था नहीं, बल्कि उसी भक्ति का स्वाभाविक, अनिवार्य और नित्य परिणाम है। इस प्रकार पुष्टिमार्ग में भक्ति और मोक्ष दोनों में भेद नहीं रह जाता। भक्ति ही मोक्ष है और मोक्ष ही भक्ति का उत्कर्ष।

इस प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय का मोक्ष-दर्शन अन्य वैष्णव सम्प्रदायों से भिन्न एक अद्वितीय दिव्य-भावना पर आधारित है। इसमें जीव की मुक्ति एक आनंदमयी, प्रेममय, लीलामय स्थिति है, जहाँ जीव भगवान के साथ नित्य लीला में सम्मिलित होकर अनंत परमानन्द का अनुभव करता है। यहाँ मोक्ष न तो भगवद्रूप में विलय है और न किसी लोक की प्राप्ति, बल्कि भगवान की सक्रिय, आत्मीय, निकटतम उपस्थित का अखण्ड अनुभव है। यही वल्लभमत का सर्वोच्च आदर्श और मोक्ष का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है।

पुष्टिमार्ग में भक्ति का स्वरूप अत्यन्त विशिष्ट और लक्षणात्मक है। वल्लभाचार्य के अनुसार पुष्टिमार्गीय भक्त जब लौकिक और वैदिक—दोनों प्रकार के बाह्य प्रतिबन्धों से मुक्त होकर केवल भगवान् में चित्त को अविरत प्रवाहित करते हैं, तब वही अवस्था 'निर्गुण भक्तियोग' की शुद्ध अनुभूति बन जाती है। इस स्थिति में मन की सम्पूर्ण गति भगवान की ओर निरुद्धेश प्रेम रूप में प्रवाहित होती है। यहाँ न कोई इच्छित फल है, न शास्त्रीय विधि-विधान का दबाव; केवल अनन्य, स्वाभाविक और निर्भ्रान्त प्रेम है। यही कारण है कि पुष्टिमार्ग की निर्गुण भक्ति दो विशिष्ट गुणों से युक्त मानी गई है—'अहैतुकता' और 'आत्यन्तिकता'। अहैतुक भक्ति का अर्थ है भक्ति बिना किसी हेतु, बिना किसी साध्य को पाने के लिए नहीं होती; जबकि आत्यन्तिकी भक्ति का आशय है कि यह भक्ति अनवरत, अखण्ड और निरंतर चलने वाली होती है। इस प्रकार वल्लभमत में भक्ति ही जीव का साधन है और भक्ति ही उसे प्राप्त होने वाला साध्य भी।

वल्लभाचार्य भक्ति की इस सर्वोच्च स्थिति का वर्णन करते हुए अन्य साधकों की सिद्धावस्थाओं का भी उल्लेख करते हैं। वे स्वीकार करते हैं कि शुद्धाद्वैत के व्यापक ढाँचे में तीन प्रकार के फलों की प्राप्ति संभव है—ज्ञानियों के लिए 'अक्षरसायुज्य', मर्यादामार्गीय भक्तों के लिए 'कृष्णसायुज्य', और पुष्टिमार्गीय भक्तों के लिए 'अलौकिक लीलाप्रवेश', जो कि अनन्त प्रेम का शिखर है। ज्ञानियों को प्राप्त होने वाला अक्षरसायुज्य उस 'अक्षर' तत्त्व की प्राप्ति है, जो परब्रह्म पुरुषोत्तम का ही आवृत स्वरूप है। पुरुषोत्तम के इस आवृत स्वरूप की आनंद-शक्ति सीमित कही गई है, इसीलिए वल्लभाचार्य इसे 'गणितानन्द' कहते हैं।

अर्थात् उसका आनन्द मापा जा सकता है, जबकि श्रीकृष्ण का 'अगणितानन्द' अनन्त, अप्रमेय और अनुपमेय है। इसी कारण अक्षर पुरुषोत्तम से अवर-कोटि का है।

ज्ञानमार्गीय साधकों का लक्ष्य यही अक्षर है, परन्तु उन्हें पुरुषोत्तम का साक्षात्कार नहीं होता, क्योंकि वे भक्ति के द्वारा भगवान को 'वरण' नहीं करते। वल्लभाचार्य स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि पुरुषोत्तम का प्राप्त होना 'भक्ति पर ही अवलम्बित' है—श्रुति में कहा गया है कि जिसे भगवान् स्वयं वरण करते हैं, वही उनका भाव प्राप्त करता है। ज्ञानियों में यह वरणभाव, अर्थात् भगवद्भाव की उत्कट इच्छा, विद्यमान नहीं होती, इसलिए ज्ञानमार्गियों को पुरुषोत्तम नहीं, केवल अक्षर की ही प्राप्ति होती है।

मर्यादामार्गीय भक्तों की स्थिति ज्ञानियों से भिन्न है। ये भगवान् को मोक्ष का साधन मानकर भजते हैं। इनके लिए भक्ति का लक्ष्य भगवान की प्राप्ति नहीं, बल्कि भगवान् के माध्यम से मुक्ति की प्राप्ति है। इसलिए मर्यादामार्गीय साधकों के लिए भागवत- कथित चार प्रकार की मुक्तियाँ—सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सार्ष्टि—उपलब्ध कही गई हैं। इनके अतिरिक्त 'कृष्णसायुज्य', जिसे पुरुषोत्तम-सायुज्य भी कहा जाता है, मर्यादाभक्तों का विशेष फल माना गया है।

भक्ति के इस मार्ग में साधक लौकिक और वैदिक दोनों प्रकार के साधन—जप, तप, श्रवण, कीर्तन और नियमों का पालन—करते हुए भगवान् में प्रेम-लक्षणा भक्ति को दृढ़ करते हैं। जब यह प्रेम गाढ़ा हो जाता है और हृदय भगवान् के विषय में पूर्ण रूप से लीन हो जाता है, तब पुरुषोत्तम पहले भक्त के अंत:करण में अक्षरब्रह्म रूप—अपने धाम, वैकुण्ठ का आविर्भाव करते हैं। वल्लभाचार्य इसे हृदय के 'गुह्याकाश' में व्यापिवैकुण्ठ का प्रकट होना कहते हैं। जब भक्त का प्रेम और बढ़ जाता है, तब इसी हृदय-वैकुण्ठ से पुरुषोत्तम स्वयं अपने साक्षात् स्वरूप में अवतीर्ण होते हैं और भक्त को कृष्णसायुज्य की सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त होती है।

वल्लभाचार्य के मोक्ष-चिन्तन में एक अत्यन्त सूक्ष्म, किन्तु निर्णायक तत्व विद्यमान है, जो उनके शुद्धाद्वैत को अन्य अद्वैत-मतों से पृथक् करता है। वल्लभाचार्य मानते हैं कि चाहे मर्यादामार्गियों को प्राप्त होने वाली 'कृष्णसायुज्य-मुक्ति' हो, या फिर पुष्टिमार्गीय भक्तों का 'गोलोक-लीलाप्रवेश', इन दोनों अवस्थाओं में जितनी भी गहन एकात्मता की अनुभूति क्यों न हो, भक्त और भगवान् के बीच 'वैयक्तिकता का भेद' कभी लुप्त नहीं होता। अनुभूति अद्वैत की प्रतीति अवश्य कराती है, परन्तु यह अभेद इतना पूर्ण नहीं होता कि भक्त और भगवान् की सत्ता एक-दूसरे में पूर्णत: विलीन हो जाए।

वल्लभाचार्य इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि मुक्ति की सर्वोच्च दशा में भी जीव और ब्रह्म का अंतर सूक्ष्म रेखा की भाँति सुरक्षित रहता है। यह रेखा भक्ति-रस की रक्षा करती है, क्योंकि यदि पूर्ण अभेद हो जाए, तो प्रेम का आश्रय-विषय-भाव ही नष्ट हो जाएगा। प्रेम का आनंद तभी संभव है जब उपासक और उपास्य, प्रेमकर्ता और प्रेमास्पद, भक्त और भगवान इन दोनों की व्यक्तित्व-सत्ता बनी रहे। इसी आधार पर वल्लभाचार्य कहते हैं कि ''मोक्ष का साधन आत्मा का ब्रह्मरूप से ज्ञान नहीं, बल्कि ब्रह्म का आत्मरूप से ज्ञान'' है। अर्थात् साधक को यह अनुभव नहीं होता कि 'मैं ब्रह्म हूँ', बल्कि यह अनुभूति होती है कि 'ब्रह्म, अर्थात् श्रीकृष्ण, मेरे आत्मस्वरूप हैं, मेरे अन्त:करण में स्थित हैं।' यही आत्मभाव, यही भगवान का सान्निध्य मोक्ष का मार्ग है।

इस भेदभाव का कारण यह है कि जीव में ब्रह्म के प्रति जो अभेदज्ञान उत्पन्न होता है, वह वल्लभ

के मतानुसार भजनानन्द में बाधक है। क्योंकि यदि जीव अपने को भगवान से सर्वथा अभिन्न जान ले, तो उपासना का प्रयोजन समाप्त हो जाएगा। उपासना में वियोग, आकुलता, अनुराग और प्रेम की जो विविध भावाभिव्यक्तियाँ हैं, वे तभी संभव हैं जब भक्त स्वयं को भगवान का सेवक, शिष्य, अंग या सखा जानता है, न कि स्वयं उसी स्वरूप में अभिन्न। अत: वल्लभाचार्य कहते हैं कि भगवान जिस जीव को कृपा करके पुष्टिमार्ग में अपने 'स्वीय' रूप से स्वीकार करते हैं, उसे वे कभी अभेदज्ञान नहीं प्रदान करते। भगवान की दृष्टि में वह ज्ञान अनिर्वचनीय प्रेम के मार्ग में अवरोधक है।

अतएव, पुष्टिमार्ग में जीव को जो अनुभूति प्राप्त होती है, वह 'ब्रह्म-स्वरूप की ऐसी अनुभूति' है जिसमें जीव स्वयं को आराधक अनुभव करता है और ब्रह्म को उपास्य। इस अनुभूति में निकटता, आत्मीयता और एकरस भाव की पराकाष्ठा तो होती है, परन्तु पूर्ण अभेद नहीं होता। यही कारण है कि भक्ति के पूर्ण उत्कर्ष में भी जीव-ब्रह्म अभेद-बुद्धि नहीं उत्पन्न होती। जीव—अपने आराध्य पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को—स्वरूपत: अपने अन्तरंग और निकटतम रहते हुए भी, स्वयं से विलक्षण, अद्वितीय और आराध्य रूप में ही अनुभव करता है।

वल्लभाचार्य का यह उपदेश पुष्टिमार्ग की भाव-प्रवणता के केन्द्र में स्थित है। यहाँ मोक्ष का अर्थ ब्रह्म में विलीन होना नहीं, बल्कि 'ब्रह्म के सबसे निकट रहकर, उसके प्रेममय स्वरूप को निरन्तर अनुभव करना' है। इसी आत्मीय, किन्तु अप्रभेद स्थिति में पुष्टिमार्गीय भक्ति का रस अखण्ड बना रहता है। वल्लभाचार्य इस प्रकार एक ऐसी मुक्ति की स्थापना करते हैं जिसमें अद्वैत की अनुभूति तो है, परन्तु भक्ति को सुरक्षित रखने वाली व्यक्तित्व-सत्ता की महीन रेखा भी बनी रहती है। यही शुद्धाद्वैत की अद्वितीय विशेषता है—अद्वैत भी, और भक्ति-रस भी; अभेद भी, और प्रेम की द्वैत-भावना भी, जो भक्त और भगवान् को अनन्त लीला में परस्पर सम्बद्ध बनाए रखती है।

वल्लभाचार्य के अनुसार मुक्तजीव और लीलाप्रवेश करने वाले भक्तों की स्थिति समान नहीं होती, यद्यपि दोनों ही जन्म-मरण से रहित होते हैं। मुक्तजीवों का अस्तित्व केवल शुद्ध आत्मस्वरूप तक सीमित रह जाता है। उनमें देह, इन्द्रियाँ अथवा कोई ऐसा साधन शेष नहीं रहता, जिससे वे भगवान् के आनन्द, लीला या भजन का अनुभव कर सकें। उनका स्वरूप माया और त्रिगुणों से सर्वथा रहित अवश्य होता है, परन्तु इसी कारण वे भगवद्भक्ति या दिव्य अनुभूतियों में संलग्न नहीं हो पाते। दूसरी ओर, लीलाप्रवेश करने वाले भक्तों के देह-इन्द्रियाँ भी दिव्य स्वरूप रखती हैं। वे न केवल माया और इसके कार्यों से मुक्त होती हैं, बल्कि पूर्ण आनन्दरूप और भगवदुपयोगी होती हैं। इन दिव्य इन्द्रियों के माध्यम से भक्त भगवान की सेवा, पूजा, अनुराग और माधुर्यपूर्ण लीलाओं में प्रत्यक्ष सहभागिता कर पाते हैं। इस प्रकार मुक्तजीव सेवा-सामर्थ्य से रहित रहते हैं, जबकि भक्त—भगवान् की कृपा से—सेवा, सान्निध्य और अनुभूति में उत्तरोत्तर आगे बढ़ते हैं।

वल्लभाचार्य की मोक्ष-संबंधी अवधारणा में सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति—दोनों का समन्वित विधान मिलता है। जिन व्यक्तियों का प्रारब्ध कर्म जीवनकाल में ही समाप्त हो चुका होता है, उन्हें तुरन्त मुक्ति प्राप्त होती है, जिसे सद्योमुक्ति कहते हैं। जबकि जिनका प्रारब्ध शेष रह जाता है, वे क्रमश:—जिस किसी लोक में उनका प्रारब्ध पूर्ण होता है—वहीं मुक्ति को प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत पुष्टिमार्गीय भक्तों में विशेष कृपा का प्रभाव होता है। उनकी न केवल संचित कर्मों का, बल्कि प्रारब्ध कर्मों का भी नाश किसी भोग बिना ही

हो जाता है। इसलिए वे सदैव सद्योमुक्ति के अधिकारी होते हैं। मुक्ति के बाद उन्हें पुरुषोत्तम से अभिन्न स्वरूप वाली अलौकिक देहेन्द्रियाँ प्राप्त होती हैं, जिनसे वे दिव्य भोग और लीलाओं का अनुभव करते हैं। यह दिव्य देह भगवान से पृथक न होकर उन्हीं की अनुकम्पा से उत्पन्न पुरुषोत्तात्मक देह होती है, इसलिए पुष्टिमार्ग में 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' कहा गया है—अर्थात् भक्त पुरुषोत्तम की दिव्यता में प्रवेश करता है, परन्तु अपनी विशिष्ट भक्त-स्वातन्त्र्य को खोए बिना।

ज्ञानियों और मर्यादामार्गीय भक्तों के लिए वल्लभाचार्य सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति दोनों को संभव मानते हैं। ज्ञानियों के विषय में कोई निश्चित नियम नहीं है, परन्तु मर्यादामार्गियों को सामान्यत: सद्योमुक्ति ही प्राप्त होती है। यद्यपि इन दोनों वर्गों के जीव मुक्ति के समय अपने प्राणों तथा इन्द्रियों का लय भगवान में न पाकर महाभूतों में ही करते हैं—अर्थात् वे प्रकृति में विलीन होते हैं, भगवान में नहीं। यह अंतर पुष्टिमार्गीय भक्तों को विशिष्ट और श्रेष्ठ बनाता है, क्योंकि उनके समस्त तत्व पुरुषोत्तम में ही विलीन होते हैं और वे लीलाप्रवेश का अधिकार प्राप्त करते हैं।

अत: वल्लभाचार्य का समस्त मोक्ष-विवेचन इस मूल विचार पर आधारित है कि भगवान् की कृपा से प्राप्त होने वाली दिव्य-अनुभूति, सेवा-सामर्थ्य और लीलाप्रवेश—ये सभी केवल भक्तों को प्राप्त होते हैं, जबकि मुक्तजीव मात्र शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित रहते हुए भी उस दिव्य आनन्द और लीलामाधुर्य से वंचित रहते हैं। इस प्रकार वल्लभ की मोक्ष-कल्पना भक्ति, कृपा और भगवान के सान्निध्य को सर्वोच्च स्थान प्रदान करती है।

निष्कर्षत: वल्लभाचार्य के अनुसार मुक्तजीव केवल शुद्ध आत्मस्वरूप में रह जाते हैं, इसलिए वे भगवान् की सेवा या लीलाआनन्द का अनुभव नहीं कर पाते। इसके विपरीत पुष्टिमार्गीय भक्त दिव्य, माया-रहित देहेन्द्रियाँ प्राप्त करते हैं, जिनसे वे भगवान की नित्य लीला में प्रवेश कर सेवा और आनंद पाते हैं। पुष्टिमार्गियों के प्रारब्ध और संचित कर्म बिना भोग के नष्ट हो जाते हैं, इसलिए उन्हें सदैव सद्योमुक्ति मिलती है, जबकि ज्ञानियों और मर्यादामार्गीय भक्तों की मुक्ति में उनका लय महाभूतों में होता है। इस प्रकार सर्वोच्च फल लीलाप्रवेश है, जो केवल कृपाप्राप्त भक्तों को ही मिलता है।

ꕥꕥꕥ

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *चन्द्रप्रकाश सिंह, वेद एवं विभिन्न सम्प्रदाय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012 ई.*
2. *वल्लभाचार्य. अणुभाष्य, संपादक: गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज. श्री वैष्णव ग्रंथ प्रकाशन, नाथद्वारा, 1982*
3. *वल्लभाचार्य, शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद, अनुवाद-व्याख्या: पं. रामनारायण शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1968*
4. *श्रीगौड़ाचार्य. वल्लभ सम्प्रदाय का दार्शनिक सिद्धान्त, चौखम्भा संस्कृत सीरीज कार्यालय, वाराणसी, 1985*
5. *ठक्कर, दयाराम. श्री वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग, गुजरात विद्यापीठ प्रकाशन, अहमदाबाद, 1972*
6. *ब्रह्मानन्द, स्वामी, शुद्धाद्वैत दर्शन की रूपरेखा, भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1960*
7. *सुरेशचन्द्र भटनागर, वल्लभाचार्य का दर्शन, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 1979*
8. *श्रीनिवास शास्त्री, पुष्टिमार्ग : ए स्टडी ऑफ वल्लभ सम्प्रदाय, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बंबई, 1955*